जैन साधना का प्राण : प्रतिक्रमण

श्रीमती शान्ता मोदी

संसार दुःख रूप है और सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र इसकी निवृत्ति के उपाय हैं। चारित्र के अन्तर्गत 'आवश्यक सूत्र' का प्रतिपादन है। लेखिका ने प्रतिक्रमण के संबंध में आचार्य हेमचन्द्र, आचार्य हरिभद्र और आचार्य भद्रबाहु के मन्तव्य को प्रकट करते हुए प्रतिक्रमण के दो, पाँच, छः और आठ भेदों को समझाया है। सूत्र, टीका, निर्युक्ति से संगृहीत आवश्यक सूत्र की विषय-वस्तु पाठकों के लिए उपादेय है। -सम्पादक

जन्म-जरा-मरण से युक्त, आधि-व्याधि के दुःखों से भरे हुए, प्रतिक्षण परिवर्तनशील व्यवहार वाले, असार होने पर भी सार सहित मालूम होने वाले इस संसार में सभी जीव सुख चाहते हैं और दुःख का नाश करना चाहते हैं। किन्तु जब तक सुख और दुःख के कारणों का ज्ञान न हो, तब तक सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश नहीं हो सकता। इसलिये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अशुभयोग, हिंसा, आरम्भ, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि दुःखों से छुटकारा पाने के लिये वीतराग प्रभु महावीर ने सम्यग्ज्ञान और सम्यक् क्रिया से मोक्ष की प्राप्ति होना बतलाया है।

सम्यग्ज्ञान आत्मा की शुद्धि के बिना कदापि नहीं हो सकता और आत्मा की शुद्धि बिना क्रिया के असंभव है। क्योंकि अकेले ज्ञान से कर्मों का क्षय नहीं होता, बल्कि ज्ञानपूर्वक क्रिया से होता है। नवीन कर्मों का बंध रोकने के लिये तथा चिरकाल से लगे हुए मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय व योग से उत्पन्न होने वाले कर्मों के समूह का नाश करने के लिये सम्यग्दृष्टि व सम्यग्ज्ञानी जनों को सम्यक् चारित्र में परायण रहना चाहिये। यह निश्चय हो जाने पर चारित्र रूप पवित्र कर्त्तव्य का प्रतिपादन करने वाला 'आवश्यक सूत्र' है।

'अवश्यं करणीयत्वाद् आवश्यकम्' जो अवश्य करणीय हो, वह आवश्यक है। साधु और श्रावक (चारों तीर्थ) नित्यप्रति क्रमशः दिन और रात्रि के अन्त में सामायिक आदि की साधना करते हैं, अतः वह साधना 'आवश्यक' पद वाच्य है।

अनुयोगद्वार सूत्र की गाथा है-

समणेण सावएण य, अवस्स कायव्वयं हवइ जम्हा।
अन्तो अहो निसस्स य, तम्हा आवस्सयं नाम।।

आवश्यक आध्यात्मिक समता, नम्रता तथा आत्म-निरीक्षण आदि सद्गुणों का आधार है।

'गुणानां वश्यमात्मानं करोतीति।' जो आत्मा को दुर्गुणों से हटाकर गुणों के वश्य अर्थात् अधीन करे, वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है। इसको करने के लिये कोई जाति बन्धन, कुल आदि का भेद नहीं है। अनुयोग द्वार-सूत्र में आवश्यक छह प्रकार के बताए हैं- सामाइयं, चउवीसत्थओ, वंदणयं, पडिक्कमणं, काउस्सग्गो पच्चक्खाणं।

आचार्य हेमचन्द्र ने प्राचीन जैन-परम्परा के अनुसार प्रतिक्रमण का व्याकरण सम्मत अर्थ करते हुए बताया- प्रतीपं क्रमणं प्रतिकमणम् अयमर्थः- शुभयोगेभ्योऽशुभयोगान्तरं क्रान्तस्य शुभेषु एव क्रमणात्प्रतीपं क्रमणं। इसका भाव है कि- शुभयोगों से अशुभ योगों में गए हुए को पुनः शुभयोग में लौटा लाना प्रतिक्रमण है। आचार्य हरिभद्र ने भी आवश्यक सूत्र की टीका में प्रतिक्रमण की व्याख्या करते हुए तीन महत्त्वपूर्ण प्राचीन श्लोक दिए हैं।

१. स्वस्थानाद् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते।।

२. क्षायोपशमिकाद् भावादौदयिक वशंगतः।
तत्रापि च स एवार्थः, प्रतिकूलगमात्स्मृतः।।

३. प्रति प्रति वर्तनं वा, शुभेषु योगेषु मोक्षफलदेषु।
निःशल्यस्य यतेर्यत्, तद्वा ज्ञेयं प्रतिक्रमणम्।।

आचार्य भद्रबाहुस्वामी ने आवश्यकनिर्युक्ति में प्रतिक्रमण के संबंध में गम्भीर विचार किया है। इसका चार प्रकार से चिन्तन किया जा सकता है-

पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे पडिक्कमणं।
असद्दहणे य तहा, विवरीयपरूवणाए।। -आवश्यक नि. १२६८

१. हिंसा, असत्य, चोरी आदि पाप कर्मों का श्रावक तथा साधु के लिये अणुव्रत एवं महाव्रत के रूप में प्रतिषेध किया गया है, यदि भ्रान्तिवश भी ये कर्म हो जाए तो प्रतिक्रमण करना चाहिये।
२. शास्त्र-स्वाध्याय, प्रतिलेखना, सामायिक आदि जिन कार्यों को करने का शास्त्रों में विधान है, उनके न किये जाने पर प्रतिक्रमण करना चाहिए, क्योंकि कर्त्तव्य कर्म को नहीं करना भी एक दोष है।
३. आगम में प्रतिपादित आत्मा आदि अमूर्त तत्त्वों की सत्यता में सन्देह अर्थात् अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण करना चाहिये। यह मानसिक शुद्धि हेतु प्रतिक्रमण होता है।
४. हिंसा आदि के समर्थक विचारों की प्ररूपणा करने पर भी प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिये। यह वचन शुद्धि है।

आवश्यक सूत्र का दूसरा नाम प्रतिक्रमण है। यह प्रायश्चित्त रूप एवं लगे हुए दोषों के पश्चात्ताप रूप होता है। पश्चात्ताप पाप के प्रक्षय का प्रधान कारण है। पाप कर्मों का तत्काल पश्चात्ताप कर लिया जाए या आलोचना कर ली जाए तो उसके अनुभाग बंध आदि में न्यूनता और शिथिलता हो जाती है।

सामान्यरूप से प्रतिक्रमण दो प्रकार का है - द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण। मुमुक्षु साधकों के लिये भाव प्रतिक्रमण ही उपादेय है, द्रव्य प्रतिक्रमण उसका आधार है। केवल यश आदि के लिये दिखावे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप में व तोता रटन्तानुसार किया जाने वाला प्रतिक्रमण द्रव्य प्रतिक्रमण है, क्योंकि इससे दोषों का शमन नहीं होता तथा न आत्मशुद्धि ही हो पाती है। संयम में लगे हुए दोषों की सरल भाव से प्रतिक्रमण द्वारा शुद्धि करना और भविष्य में उन दोषों को न करने के लिये सतत जागरूक रहना प्रतिक्रमण का वास्तविक उद्देश्य है। ताकि साधक पाप भीरू होकर आत्मशुद्धि हेतु सतत आगे बढ़ता रहे। भाव प्रतिक्रमण में दोष-प्रवेश के लिये अंशमात्र भी अवकाश नहीं रहता। इसके द्वारा पापाचरण का सर्वथाभावेन प्रायश्चित्त हो जाता है। आत्मा पुनः अपनी शुद्ध स्थिति में पहुँच जाता है। भाव प्रतिक्रमण के लिये जिनदास कहते हैं- ''भाव पडिक्कमणं जं सम्मदंसणाइगुणजुत्तस्स पडिक्कमणं ति।।'' अर्थात् सम्यग्दर्शनादि गुणयुक्त जो प्रतिक्रमण होता है, वह भाव प्रतिक्रमण है।

आचार्य भद्रबाहु आवश्यकनिर्युक्ति में कहते हैं- भाव पडिक्कमणं पुण, तिविहं तिविहेण नेयव्वं। अर्थात् भाव प्रतिक्रमण तीन करण एवं तीन योग से होता है। आचार्य हरिभद्र ने उक्त निर्युक्ति गाथा पर विवेचन करते हुए एक प्राचीन गाथा उद्धृत की है-

मिच्छत्ताइ ण गच्छइ, ण य गच्छावेइ णाणुजाणेई।
जं मण-वय-काएहिं, तं भणियं भावपडिक्कमणे।।

इसका भाव है कि मन, वचन एवं काय से मिथ्यात्व, कषाय आदि दुर्भावों में न स्वयं गमन करना, न दूसरों को गमन कराना, न गमन करने वालों का अनुमोदन करना ही भाव प्रतिक्रमण है।

आचार्य भद्रबाहु ने आवश्यक निर्युक्ति में काल के भेद से प्रतिक्रमण के तीन पक्ष बताये हैं-

१. भूतकाल में लगे हुए दोषों की आलोचना करना।

२. वर्तमान काल में लगने वाले दोषों से संवर द्वारा बचना।

३. प्रत्याख्यान द्वारा भावी दोषों को अवरुद्ध करना।

अपने दोषों की निन्दा द्वारा भूतकालिक अशुभयोग की निवृत्ति होती है, अतः अतीत प्रतिक्रमण है। संवर के द्वारा वर्तमान काल विषयक अशुभ योगों की निवृत्ति होती है, यह वर्तमान प्रतिक्रमण है। प्रत्याख्यान के द्वारा भविष्यकालीन अशुभ योगों की निवृत्ति होती है। भगवती सूत्र में कहा है- अईयं पडिक्कमेइ, पडुप्पन्नं संवरेइ, अणागयं पच्चक्खाइ।

प्रतिक्रमण जैन साधना का प्राण है। जैन साधक के जीवन का कोना-कोना प्रतिक्रमण के महाप्रकाश से प्रकाशित होता है। प्रतिक्रमण की साधना प्रमाद को दूर करने के लिये है। प्रमाद से साधक का जीवन चाहे साधु हो या श्रावक, आगे नहीं बढ़ पाता है। प्रतिक्रमण की महत्ता के लिये गौतम ने प्रभु महावीर से प्रश्न किया-पडिक्कमणेणं भंते जीवे किं जणयइ?

प्रभु ने फरमाया-पडिक्कमणेणं वयछिद्दाइं पिहेइ, पिहियवयछिद्दे, पुण जीवे निरुद्धासवे असबलचरित्ते अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्ते अपहुत्ते (अप्पमत्ते) सुप्पणिहिए विहरइ।

प्रश्न- भगवन्! प्रतिक्रमण करने से आत्मा को किस फल की प्राप्ति होती है?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर- प्रतिक्रमण करने से अहिंसा आदि व्रतों के दोष रूप छिद्रों का निरोध होता है। छिद्रों का निरोध होने पर आत्मा आस्रव का निरोध करता है तथा शुद्ध चारित्र का पालन करता है। इस प्रकार वह आठ प्रवचन माता (पाँच समिति तथा तीन गुप्ति रूप संयम) में सावधान, अप्रमत्त तथा सुप्रणिहित होकर विचरण करता है।

दिन-रात अविराम गति से जीवन की दौड़ धूप चल रही है। सावधानी रखते हुए भी मन, वाणी और कर्म में विभिन्नता आ जाती है। साधक गुरुदेव या भगवान् की साक्षी से अपनी भटकी हुई आत्मा को स्थिर करता है। भूलों को ध्यान में लाता है। मन, वाणी और कर्म के पश्चात्ताप की आग में डाल कर निखारता है, एक-एक भूल को निरीक्षण शक्ति से देखता है। देखकर स्वयं को जान लेता है और साधना के मार्ग में सुगति से निरन्तर आगे बढ़ता रहता है तथा अपने को शुद्ध बना लेता है।

अपनी भूलों के प्रति प्रमाद साधक के लिये महापाप है। वह साधक ही क्या, जो अपने मन के कोने-कोने को सम्यक् रूप से टटोल कर स्वच्छ न करे। जैन धर्म का प्रतिक्रमण इसी सिद्धान्त पर आधारित है। स्वदोष दर्शन ही आगमिक भाषा में प्रतिक्रमण है।

प्रतिदिन प्रतिक्रमण करते रहने से साधक में अप्रमत्त भाव की स्फूर्ति बनी रहती है। प्रतिक्रमण के समय पवित्र भावना का प्रकाश मन के कोने-कोने में जगमगाने लगता है और समभाव का अमृत-प्रवाह अन्तर के मल को बहाकर साफ कर देता है। पाप हुए हों या न हुए हों, प्रतिक्रमण के समय सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दना, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान की साधना तो हो ही जाती है। यह साधना भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यह ऐसी औषधि है, जिसका सेवन करने से रोग तो मिटेगा ही, पर भविष्य में भी उसका प्रभाव रहेगा।

प्रतिक्रमण में 'मिच्छामि दुक्कड़' को अत्यन्त महत्त्व दिया गया है। ताकि साधक जागरूक रहे और अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण रूप से पालन करता रहे।

संक्षेप में कहें तो प्रतिक्रमण आत्मशोधन की सर्वश्रेष्ठ विधि है। मनुष्य जीवन के दैनिक क्रियाकलापों को करता हुआ, पापों से बचकर धर्म मार्ग पर अग्रसर होता रहे और अपनी आत्मा पर लगे हुए पाप कर्म की कालिख को शुद्ध करता हुआ परम पद की ओर अग्रसर हो, यही प्रतिक्रमण का लक्ष्य है। अनेकानेक भव्य आत्माओं ने अपनी आत्मा का शोधन करके अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त किया है। उसी प्रकार प्रत्येक साधक मनुष्य भव की महत्ता को समझकर परम पद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर शुद्ध, बुद्ध, मुक्त हो सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ

१. आवश्यक निर्युक्ति- आचार्य भद्रबाहु स्वामी

२. पंच प्रतिक्रमण- पं. सुखलाल

३. आवश्यकसूत्रम्- पं. मुनि श्री कन्हैयालाल जी म.सा.

४. जिनवाणी- आगम विशेषांक

५. आवश्यक सूत्र- आचार्य हरिभद्र

६. आवश्यक सूत्र- पं. मुनि श्री अमोलक ऋषि जी म.सा.

-संयोजक, श्री जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, सी-२६, देवनगर, टोंक रोड, जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org